कथा क्रम

जनवरी–मार्च 2022
मूल्य – ₹ 40

कथासाहित्य, कला एवं संस्कृति की त्रैमासिकी

कथा क्रम - 2021
हिन्दी कथा साहित्य पर केन्द्रित अखिल भारतीय आयोजन
लखनऊ -28 नवम्बर 2021

ISSN-2231-2161

कथाक्रम

dFkk lkfgR;] dyk ,oa laLÑfr dh =Sekfld

¼dsUnzh; fgUnh laLFkku vkxjk ls lg;ksx izkIr½

वर्ष : 24 अंक : 91

जनवरी-मार्च 2022

कहानियां

11 **तेजेन्द्र शर्मा** : दिल बहलता क्यों नहीं....

17 **मीता दास** : एक और रति विलाप

25 **विभा रानी** : चुनमुन की पाठशाला

31 **अनिता रश्मि** : कलुआ, माय और बाढ़

47 **मॉर्टिन जॉन** : जाना एक शांतिदूत का

55 **डॉ. उपमा शर्मा** : फूलों के आलते में रेत की दीवार

58 **डॉ. संदीप शर्मा** : उपनाम

63 **कैट शोपेन** : पश्चाताप
अनुवाद : जयश्री पुरवार

लघुकथाएं

24 **अमरीक सिंह दीप** : ढाई आखर वाला शब्द

70 **डॉ. पूरन सिंह** : नदी के उस पार

95 **महेश कुमार केशरी** : रावण

81 **कृष्णा मनु** : आड़

लेख

02 **संजय कुमार सिंह** : उदय प्रकाश की कहानियों में आप्त-लोक की तलाश

36 **डॉ हृषीकेश कुमार सिंह** : चारित्रेण च को युक्त:

परख

42 **रणेन्द्र** : भूमण्डलोत्तर समय के प्रतिनिधि कथाकार पंकज मित्र

कविताएं

66 **रोहिणी अग्रवाल** : हम अदृश्य कर दी गई स्त्रियां, व्यस्त हूं मैं, विचलित समय

67 **अनुपमा तिवारी** : मैं दुखी नहीं हूं न!

67 **रजत सन्याल** : आज मैं शोक में डूबा हुआ हूं

68 **रोहित प्रसाद पथिक** : हर किसी के जीवन में मौजूद है एक घिनौना सच, दूर बैठे हुए लोग, दीवार की पपड़ियों ने लिखा एक नाम

68 **कविता पनिया** : न भूलना, प्रयास, मानना

70 **मिथिलेश रॉय** : ईश्वर

व्यंग्य

71 **मुश्ताक अहमद युसुफी** : कुम्हलांगना
अनुवादक : डॉ. आफताब अहमद

कथा-शोध

76 **डॉ. सविता शर्मा** : हिन्दी साहित्य और समाज में समलैंगिकता का अतीत तथा वर्तमान

समीक्षाएं

82 **उर्मिला शिरीष** : 'जीवन लय का अन्वेषण' : गोविन्द मिश्र रचनावली (गोविन्द मिश्र समग्र)

84 **सूरज प्रकाश** : 'छूटा हुआ कुछ' एक बेहतरीन और पठनीय उपन्यास (उपन्यास : डॉ. रमाकान्त शर्मा)

85 **प्रताप दीक्षित** : समय की सच्चाईयों को स्वीकारने की वाचाल भंगिमा (कहानी संग्रह : महावीर राजी व पंकज सुबीर)

89 **डॉ. दुर्गा प्रसाद अग्रवाल** : सामान्य कक्षा का व्यापक आयाम (उपन्यास : लक्ष्मी शर्मा)

90 **अवनीश त्रिपाठी** : अंगूठे पर वसीयत (उपन्यास : शोभनाथ शुक्ल)

93 **सुषमा मुनीन्द्र** : शिक्षा की मंडी-कोचिंग@कोटा (उपन्यास : अरुण अर्णव खरे)

95 **रजनी गुप्त** : संभावनाओं का अनन्त आकाश (उपन्यास : ऋचा पाठक)

96 **डॉ. वेदप्रकाश अमिताभ** : आजादी के लिए संघर्ष का आख्यान (उपन्यास : राम कठिन सिंह)

98 **विजय पुष्पम्** : ठौर, अपेक्षाओं के बियाबान (कहानी संग्रह : दिव्या शुक्ल व निधि अग्रवाल)

रपट-कथाक्रम-2021

102 **शैलेन्द्र सागर** : साहित्य, समाज और सत्ता से बेदखल किसान

आवरण : **बंशीलाल परमार**

रेखाचित्र : **राजेन्द्र परदेसी**

संपादक

शैलेन्द्र सागर

संपादन सहयोग

रजनी गुप्त

सहयोग

मीनू अवस्थी

प्रबन्ध सहायक

राम मूरत यादव

संपादन संचालन : अवैतनिक

संपादकीय सम्पर्क :

डी-107, महानगर विस्तार, लखनऊ-226006

दूरभाष : 09415243310

e-mail : kathakrama@gmail.com

e-mail : kathakrama@rediffmail.com

इस अंक का मूल्य : 40 ₹

सदस्यता शुल्क : व्यक्तिगत त्रैवार्षिक-450 ₹, आजीवन 3000 ₹

संस्थाएं : वार्षिक-200 ₹, त्रैवार्षिक-550 ₹, आजीवन 3500 ₹

*(सारे भुगतान **मनीआर्डर/बैंक ड्राफ्ट** द्वारा कथाक्रम के नाम से किये जायें)*

पत्रिका में प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचारों से संपादक की सहमति आवश्यक नहीं है।

मुद्रक : प्रकाश पैकेजर्स, प्लाट नं. 755/99 A, गोयला इनडस्ट्रियल एरिया, यू.पी.एस.आई.डी.सी.-देवा रोड, चिनहट, लखनऊ-226019

आलेख

उदय प्रकाश की कहानियों में आप्त-लोक की तलाश

सुपरिचित आलोचक, कथाकार, 21 मई 1968 को जन्म जिनकी रचनाएं सभी प्रमुख पत्र पत्रिकाओं में होती रही है। दो उपन्यास 'रहेगी खाक में मुंतजिर' व 'सपने में भी नहीं खा सका वह खीर' तथा कई कहानी संग्रह, काव्य संग्रह प्रकाशित। आलोचना की पुस्तक 'समकालीन कहानियों का पाठ-भेद' प्रकाशित।
सम्प्रति- प्रिंसिपल, पूर्णिया महिला कालिज, पूर्णिया-854301
मो. 9431867383
ई-मेल : sksnayanagar 9413@gmail.com

❑ संजय कुमार सिंह

गहन है यह अंधकारा
प्रिय मुझे वह चेतना दो देह की,
याद जिससे रहे वंचित गेह की,
खोजता फिरता न पाता हुआ,
मेरा हृदय हारा।

आप्त-लोग के विघटन, आत्म-विस्थापन और आत्म-विस्मृति की पीड़ा जब घनीभूत हो जाती है, तो निराला की यह कविता उस विचार संवेदना की पुनर्चना करती हुई आत्म-राग को हिलोरती हुई होठों पर प्राची के क्षितिज की मुस्कान लेकर उभर आती है। वेदना से आकुल मन-प्राण में ऊर्जा की अनंत-शक्ति के प्रतिरोध से पहले स्मृति में, फिर चेतना में एक उद्‌भास कौंधता है। प्राय: इन्हीं आत्मपूर्ण ग्रहणशीलता की दशा में उदय प्रकाश की कहानियां भी हमें झकझोड़ती हैं, जब एक जबर्दस्त प्रतिरोध और आत्मिक जिद्‌द के साथ वे अपनी कहानियों में हमारे विघटित होते आप्त-लोक की रचना करते हैं। रचनात्मक तनाव की यह मानसिक प्रक्रिया तब तक कहानीकार के रचनात्मक अवधान में होता है, जब तक साहित्य के किसी रूप में इसकी रचना न हो जाए। प्रतिरोध के इस मानसिक स्तर और उसमें छिपी रचनात्मक जिजीविषा का संज्ञान हमें तब होता है, जब हम उसी संवेदनशीलता और आत्मज्ञान के साथ अंतर्क्रिया करते हुए पाठकीय स्तर पर गुजरते हैं। नेलकटर और अंत में प्रार्थना, पीली छतरी वाली, छप्पन तोले का करधन, दिल्ली की दीवार, अरेबा, परेबा, हीरालाल का भूत, पाल गोमरा का स्कूटर टेपचू, तिरिछ, मोहन दास और वारेन हेस्टिंग्स का सांढ़ जैसी कई कहानियां हैं, जो पाठ के स्तर पर हमारी चेतना में हॉण्ट करती हैं। इन कहानियों के पढ़ते हुए हमें यह अहसास होता है कि हिन्दी में विश्व के श्रेष्ठतम साहित्य से कमतर चीजों से हम नहीं गुजर रहे। संवेदना और विचार का रचनात्मक धरातल हमें अपने उत्कर्ष तक ले जाता है। तीसरी दुनिया की अस्मिता और उनके वैचारिक प्रतिरोध का एक ऐसा परिदृश्य उभरता है, जो हमें अपने आप्त-लोक की तलाश तक ले जाता है। भूमंडलीकृत बाजारवाद के यूटोपिया में विलोपित होती हमारी आत्म-सत्ता का विखण्डन हमें बेचैन कर देता है।

उदय प्रकाश की कहानियां इस त्रासदी को, इस पीड़ा को गहरे प्रतिकार के साथ रचती हैं। उनमें देशज चेतना और जातीय संवेदना का तल इतना प्रगाढ़ है कि इस लगाव को हम मार्खेज की तरह महसूस कर सकते हैं। यह वैविध्य जातीय इतिहास के साथ-साथ लोक-जीवन के उन छोटे-छोटे सांस्कृतिक विवरणों मे भी देख सकते हैं, जिनका उद्‌देश्य वैश्विक सांस्कृतिक साम्राज्यवाद और नव उपनिवेशवाद के शोषण-दमन से उत्पन्न परिस्थितियों का अतिक्रमण है। मानवीय आत्म-क्षरण को रोकने की छटपटाहट हर स्तर पर उनमें दिखती है, चाहे अपने सामाजिक ढांचे का अंतर्विरोध हो या बाहरी हस्तक्षेप से उत्पन्न विरूपण। वे

सतत जाग्रत और सचेतनशील होकर उन संभावनाओं के सकारात्मक अंश की खोज करते हैं, जिनसे अपनी दुनिया बचायी जा सके।

आकस्मिक नहीं कि 'राम की शक्ति-पूजा' की रचना-प्रक्रिया का तनाव पराजय और पीड़ा का अतिक्रमण है, तो सरोज स्मृति की रचना-प्रक्रिया आकुल शोक के द्वारा दुख के विरेचन की कोशिश ताकि शक्ति की नई कल्पना हो सके और सरोज की स्मृति से उसकी 'पुनर्रचना'। अब दृष्टि-बिन्दु के तनाव को रचना प्रक्रिया में समझा जाए, जहां रचनाकार अपने समय-समाज को अपने तरीके से ग्रहण करता है। यहां यह सवाल मन में उभरता है कि कहानी की रचना-प्रक्रिया में दृष्टि-बिन्दु के तनाव से क्या तात्पर्य है? इसे समझना क्यों आवश्यक है। नामवर जी कहते हैं कि अक्सर कहानी के विषय को उसका मंतव्य समझ लिया जाता है जबकि वह मर्म घटना,परिस्थिति, पात्र और चरित्र के आंतरिक समवाय में होता है। बूढ़े पर लिखी उषा प्रियंवदा की कहानी बूढों की उपेक्षा की कहानी न होकर, उपेक्षा के प्रतिरोध की कहानी है जो भाव-विगलित करुणा नहीं सृजित करती। यहां इन बातों का जिक्र इसलिए भी आवश्यक है कि आलोचना को उसके विपथन से बचाया जा सके।

अब 'मोहन दास,' 'अभिनेत्री' और 'श्वेटर' जैसी कहानियों के दृष्टि-बिन्दु के तनाव को लीजिए। 'मोहन दास' में जो डिटेल्स हैं, वह कहानी का ढांचा है, वह उसका रूपक है। इनमें अंतर हो सकता है, पर उसका मर्म दृष्टि-बिन्दु के उस तनाव से उत्पन्न होता है, जिनमें स्वातन्त्रयोत्तर भारतीय लोकतंत्र के मौजूदा ढांचे में गांधीवादी मूल्यों की अवमानना होती है। इसी तरह पंकज बिष्ट के सम्पादन में निकले आजकल के विशेषांक में एक कहानी छपी थी 'अभिनेत्री', जिसमें कहानी का ढांचा प्रेम कहानी का था, लेकिन विषय से इतर मर्म इस बात में था कि किस तरह ग्रासरूट के लोग अपने हाथ की लकीरों से बनाई दुनिया में मोहनदास की तरह उपेक्षित हो जाते हैं। नेपथ्य में अपने ही लोगों द्वारा इस्तेमाल के बाद धकेले जाने वाले लोगों की भूमिकाओं का जिक्र इतिहास में नहीं होता है। वे अधिक से अधिक कठिना नदी के किनारे ककड़ी या खरबूजा लगाते हैं या फिर अभिनेत्री कहानी के प्रोफेसर साहब की तरह गमले में टमाटर और भिण्डी। क्या गांधी, जयप्रकाश, निराला, मुक्तिबोध से लेकर बलराज मधोक और लालकृष्ण आडवाणी के नाम अलग-अलग संदर्भों में लिए जाएं? उनके इस दर्द को कुरेद कर वर्तमान और स्मृति के दंश के द्वन्द्व तक पहुंचा जाए, पर कैसे? क्या बिना विश्वयुद्ध के उस विध्वंस को समझे हुए 'परिंदे' और 'वे दिन' के मर्म को समझा जा सकता है, जहां इतिहास और स्मृति का वर्तमान जीवन से अविच्छन्न स्तर पर पल-पल द्वन्द्व चलता है? मृत्य की वह यंत्रणा एक-एक सांस को अपनी सत्ता सौंपते हुए जीवन के प्रति मनुष्य की आस्था को खंडित नहीं होने देती। इस वेदना को पाठ के स्तर पर महसूसना कितना कठिन है, यंत्रणापूर्ण है। ऐसा लगता है कि दुख के इस अवबोध में एक महत्तर दुनिया की मांग छिपी हुई हो।

कहना नहीं होगा कि समकालीन हिन्दी कहानियों का मूल्यांकन जिस तरह हो रहा है, वह असंतोषजनक है। इसमें मेरा कोई क्षोभ-विक्षोभ नहीं। बस एक इल्तिजा है, एक बेचैनी है। कुछ अपवादों को छोड़ कर कहानियों के समकालिक कण्टेण्ट, उनकी आंतरिक संरचनाओं में अंतर्निहित यथार्थ की वृहत्तर संभावनाओं और कलात्मक परिशिष्टों को भुला कर सतही तौर पर रिव्यू हो रहा है। जाने क्यों मुझे उदय प्रकाश, स्वयंप्रकाश, संजीव, शिवमूर्ति, सृंजय, चन्द्रकिशोर जायसवाल, प्रभा खेतान, प्रियंवद, अखिलेश, अवधेश प्रीत, देवेन्द्र, रघुनंदन त्रिवेदी, मनोज रूपड़ा की पढ़ी कहानियां ही आज भी श्रेष्ठ लगती हैं। तिरिछ, टेपचू, मोहनदास, पालगोमरा का स्कूटर, पार्टीशन, अपराध, लिटरेचर, पूत! पूत! पूत आरोहण, तिरिया चरित्तर, केसर-कस्तूरी, ख्वाजा ओ पीर, हिंगवा घाट में पानी, रे, आओ पेपे घर चलें, नदी होती लड़की, चिट्ठी, क्षमा करो हे वत्स, नालंदा पर गिद्ध, वह लड़की अभी भी जिन्दा है, जिबह आदि। पर मैं यह नहीं कहता कि इनके बाद सशक्त कहानियां नहीं लिखी जा रहीं.. वह लगातार लिखी जा रही हैं, लेकिन नामवर सिंह और यादव जी जैसे लोगों के जाने के बाद यह संकट और गहरा हुआा है। पूस की रात, उसने कहा था, आकाशदीप, फांसी, ताई, तीसरी कसम, शरणदाता, भोलाराम का जीव, अपरिचित, राजा निरबंसिया, जहां लक्ष्मी कैद है, फेंस के इधर-उधर, सुख, जैसी कहानियां हर पाठक को याद आती हैं। हिन्दी में रीडर्स की संख्या घटी है अथवा डायवर्सन हुआ है? धर्मयुग, दिनमान, कादम्बिनी, माया, फिल्मी कलियां के पाठक कहां गए? कहां गए प्रेमचंद से लेकर रानू तक के पाठक? पाठक अगर हैं भी तो उनकी अहमियत? मैं समझता हूं कि कुछ अपवादों को अगर छोड़ दिया जाए, तो हिन्दी आलोचना की यह स्थिति है कि अगर 'गीतांजलि' के लिए हिन्दी के लोग जूरी के सदस्य होते तो यह कृति छंट जाती। रवीन्द्रनाथ को दोयम दर्जे का यूटोपियन कवि कहा जाता। बंगला साहित्य के पाठकों ने शरतचन्द्र और बनफूल को उनके जीवन काल में मान दिया। मगर हिन्दी में निर्मल वर्मा और उदय प्रकाश भी पाठक के बल पर जिन्दा हैं। निर्मल वर्मा और उदय प्रकाश की कहानियों की इतनी भ्रामक व्याख्याएं हुई हैं उनके कटु आलोचकों के द्वारा कि वे उन्हें हिन्दी कहानी की जातीय परम्परा को समग्रता में बिना समझे ही देश निकाला देने को आतुर रहते हैं। उनके एक पाठक की प्रतिक्रिया इस फेक आलोचना पर इस तरह आती है- 'वैसे मैं उदयप्रकाश जी पर लिखी कोई आलोचना पढ़ता नहीं हूं क्योंकि

मुझे लगता है कि भारतीय आलोचक उनके साथ न्याय नहीं करते। वे आजादी के बाद के इकलौते हिंदी कहानीकार हैं, जिनका इतना विरोध और सम्मान एक साथ हुआ।' (आभासी दुनिया से। सतीश कुमार सरदाना।)

हिन्दी के स्वनामधन्य विचारकों और सम्पादकों को लगता है कि जिन चीजों मे उनकी आस्था नहीं, वो चीजें सही नहीं हैं। गोया उनकी सहमति से ही लेखक लिखे। उन्हें उदय प्रकाश की 'डिबिया' कहानी का पाठ जरूर देखना चाहिए, जहां नैरेटर कहता है- 'लेकिन समस्या यह है कि यह कैसे पता चले कि उन लोगों का विश्वास हासिल करना, मेरे लिए इस डिबिया को खोलने से जोखिम और दांव से ज्यादा मूल्यवान है? यह भी तो हो सकता है कि उन सबको मेरी बात के प्रमाणित हो जाने पर सिर्फ मेरे एक इस अनुभव पर विश्वास हो जाए, लेकिन दूसरे बाकी अनुभवों को वे फिर भी अविश्सनीय मानते रहें। ऐसे में तो अपनी बातों को उन तमाम लोगों के सामने प्रमाणित करते-करते ही मैं बूढ़ा हो जाउंगा, मर भी जाऊंगा।' डिबिया।

असहमति के लोकतंत्र का आदर इधर केवल राजेन्द्र यादव में रहा। इसलिए हंस का आविर्भाव इस मामले में बेजोड़ रहा। बाद में तो उन्होंने सम्पादकीय का अंदाज भी बदल डाला। हम गांव-कस्बा से शहर आए। हम लोगों ने सारिका और विशेष कर 'हंस' के जरिए उदय प्रकाश की कहानियां पढ़ीं।

-और अंत में प्रार्थना। यह लम्बी कहानी हंस में छपी थी। मुझे याद है हंस को लोकप्रिय बनाने में इन कहानियों का बड़ा हाथ था। पीली छतरी वाली लड़की की भी धूम थी। पालगोमरा का स्कूटर, वारेन हेस्टिंग्स का सांड़, तिरिछ। तिरिछ से पहले छपी कहानियों की भी हमें तलाश रहने लगी।... अभी यह तो उत्प्रेरण मात्र है, उनकी रचना प्रक्रिया को समझने की कोशिश भर। नि:संदेह वे बहुत महत्वपूर्ण कवि, कथाकार होने के साथ वे विचारशील समीक्षक भी हैं। यहां रुक कर अगर उनकी 'दिल्ली की दीवार' कहानी के दीवार वाले मिथक के तिलिस्म को डी-कोड कर लें, तो लगेगा कि मोहनदास पढ़ने में जितना विलक्षण रहा हो, उसने दिल्ली के इतिहास को ठीक से पढ़ा नहीं, वर्ना उसकी तामीर में उसे वह खोखल उन दीवारों में दिखता, जिसे संवैधानिक प्रस्तावनाओं के औदात्य और लोकतंत्रिक मूल्यों की अभूतपूर्व व्याख्या से उनकी अवैध संतानों ने ढक कर रखा और यह अपराध भी दूसरे लाचार, कमजोर, गरीब विवश लोगों के सिर पर ठोंका, जिनकी अनुपस्थित उपस्थिति की कोई पहचान नहीं होती। 'यह तय था कि अचानक एक दिन मैं भी इस नुक्कड़ पर दिखना बन्द हो जाऊंगा। जिन्नातों और दौलतमन्दों के इस शहर दिल्ली से ऐसे ही गायब होते हैं दरवेश, गरीब, बीमार और मामूली लोग फिर वे कभी नहीं लौटते। इस शहर में उनकी स्मृतियां तक नहीं बाकी रहतीं।' (दिल्ली की दीवार)' आगे वे कहते हैं,'- वे किसी बदकिस्मत फकीर के आंसू की तरह होते हैं, जो जब जाता है, तो उस जगह की जमीन पर, जहां उसका वजूद होता था, सिर्फ एक छोटी-सी नमी और थोड़ा-सा गीलापन छोड़ जाता है। यह नमी उसके वक्त के अन्याय के बरक्स उसके खामोश आंसुओं और थूक की होती है।' (दिल्ली की दीवार)।

अर्धरात्रि के आजाद सपनों में भटकते ये कौन अभागे लोग हैं, दिल्ली में कहां रहते हैं, जरा देखिए-'यहां ऐसा ही होता था। यह किसी नियम जैसा था। यहां हर रोज आने वाला आदमी अचानक ही एक दिन अनुपस्थित हो जाता और फिर भविष्य में कभी नजर न आता। इनमें से अधिकांश लोगों का निश्चित पता

हिन्दी कहानी के संदर्भ में कहा जा सकता है कि उदय प्रकाश ने एक समय के बाद उसके गतिरोध को तोड़ कर नया सघन, संश्लिष्ट, रूप और अर्थ की अन्विति के स्तर पर अभिव्यंजक पाठ प्रस्तुत किया है। अपने समय-समाज के यथार्थ को नई संरचना में ढालकर कहानी का उपजीव्य बनाया है ताकि कहानी की मूल संज्ञा का विलोप नहीं हो। विषय के मर्म को ग्रहण कर उस बीज को अपनी विचार-चेतना में पका कर उसका कायांतर किया है, जो वक्त की जरूत थी। क्या आपको ऐसा नहीं लगता जटिल, संश्लिष्ट, बहुस्तरीय परस्पर अंतर्विरोधी समय-समाज की विसंगति और विडम्बना को अवधान में लाकर, उन्हें आत्मसात कर, विचार, स्वप्न और कल्पना के सहारे वे कहानी का अपूर्व पाठ बनाते हैं, जो नई व्याख्या के लिए हमें उकसाते हैं? यह जितना कलात्मक है, उतना ही यथार्थ-वेधक भी। अप-संस्कृति, अवमूल्यन, आत्म-विच्युति, अमानवीकरण आत्म-विपथन, निर्वासन, जो इस समय की अनिवार्य दुर्घटना है, जिससे किसी भी सुंदर दुनिया के कुरूप हो जाने का खतरा बढ़ जाता है, उदय प्रकाश की कहानियों में इसके प्रतिरोध का रचनात्मक धरातल इतना स्पष्ट है कि इसे किसी आईने के बिना भी देखा जा सकता है।